फिर तेरा फसाना याद आया

महेश कटारे

महेश कटारे हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार हैं।

लिखना जरूर है और समझ नहीं आ रहा कि क्या लिखूँ? सोचते सोचते ध्यान में आया कि क्यों न प्यार पर लिख डालूँ। सदियों से लिखा जा रहा है। कबीर ने भी कहा है कि- 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े हो पंडित होय'। मैं पंडित होना नहीं चाहता क्योंकि इन दिनों पंडित होना हर ओर से धिक्कार का शिकार होना है। प्रेम पर एक लंबा, असमाप्त जैसा निबंध लिखा जा सकता है अगर प्यार या मुहब्बत वांछित मुकाम तक पहुँची हो। कबीर ने अपनी तरह से 'प्रेम रस' चखा था.... बिना नारी का आश्रय लिए। क्योंकि नारी उनके तईं माया थी, और गाया महादगिनी से लेकर जाने क्या-क्या होती है। जो हो, विस्तार में न जाते हुए मैं प्यार विषयक अनुभव की कहानी लिखने की कोशिश कर रहा है।

एक अनुभव तो यह कि मेरे परिवार में फिल्मी वा किताबी प्यार की कोई परंपरा नहीं रही। परिवार क्या पूरे इनाके में नहीं रही। हमारे यहाँ संबंधों का लगाव था। सेबेध. के हिसाब से प्यार उर्फ बगाव की मात्रा में घर-बद भी होती रहती। हमारे यहाँ पति-पत्नी का प्यार भी विवाह के बाद धीरे-धीरे विकसित होगा होकर उम्र के साथ-साथ, प्रौढ़ होता रहा है तभी तो इस सोध्य बेला की सीमा में प्रवेश कर मैं अपने खण्ड-खण्ड प्रेम वा लगान का लेखा-जोखा लगाते बैढ़ गया है। खण्ड खण्ड इसलिए कि मेरे इलाके या बाहर में जन्मे प्रसिद्ध शायर विदा फाअनी साहब का एक प्रसिद्ध शेर है – 'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता, कहीं अभी तो कभी आसभी नहीं मिलता'

बहरहाल कहानी कुछ इस तरह शुरू होती है कि बहुत दिनों तक या कहा जाये कि एक उम्र तक परिस्थियों ने अपने बारे में कुछ सोचने का अवसर ही नहीं दिया और ज जब सोचने योग्य हुआ अथवा ज्यौ त्यों कर सोचने लगा तब स्वयं को ऐसे लोगों की संगत में कमा जो स्वयं की बजाए आसपास की दुनियाँ के बारे में

सोचने को उकसाते थे। मेंरी दुनियाँ भी कोई बहुत बड़ी नहीं थी. बस गाँव, घर, परिवार, रिश्तेदार- उदर भरे का धर्म, रिवाज एवं ज्ञान के श्रोत रामचरितमानस, हिन्दी अनुवाद सहित शीता, आन्ह-रखण्ड, सननसिंह चौहान का दोहा चौपाई कृत महाभारत, सुखसागर जैसी कुछ अन्य कृतियों के अलावा पाठ्यक्रम की पुस्तकें। मैने वो 'महाभारत' भी देखा न पदा था जिसमें लिखा है- प्रदेहा श्री तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत कचित् अर्थात् इसमें जो है वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं वह कहीं नहीं है। इसी संगत मैं यह सीख रचत: मिळ जाती कि अपने बारे में किसी बड़प्पन का कोई भ्रम मा पालो - विशेषत: अपने लेखन के विषय में दु निया की तो छोड़ो भारत में ही हिन्दी के भी उतने बड़े-बड़े कवि, कथाकार हो चुके हैं कि उनकी ऊँचाई तक देखने में सिर में टेकि गिरयाना तथा लेखबर ही समय में महिला के, तो में जाते हैं। मैं भी मेरे पास यम पालने जैसा था भी जा मानव ही बौद्धिकता। परिवार भी कोई श्री मान ही मेल ज्ञातवती जाति में न था। उतना अतारा यानि किसी से दबने की परम श्री मांगने की । गाँव तथा आपणास के नाही / सेबा पर भी जाते थे। मो जाये तथा तीन पैसे इस प्रकार पिता शीर्ष पर थे तो बड़े-बड़े और दिखाने से विवा होते थे। इनमें मैं भी दो विचर में महावत में 'आगे नाथ न पीछे पगढा'- यमर में श्री हो जाये के परिवार को कोई उत्तोरनीय होत होते हो रही। मेरी काकियों के दिनंगत होने के बाद से शैवों (चाचा) बेला पिलाई गाहियाँ साथ रखते थे । मर मात्र के अनुसार दो जेदहें भी थीं घर में - एक बारूद वाली पमाळेश्वर, दूसरी श्रीनर दना । बेक की भाफी प्रतिष्ठा थी। किसी बड़े जींदार ने एक बार आमा-उनकः चुनैती कर दी थी तो एक कारका श्रीनर दुनामी लेकर फ़रार हो गए । हमारे सेन में कार के सोने चले जाना, भाग जाना नहीं बल्कि दस्यु गिरोह में शामिल हो जाने को जाता था। प्रवनि का प्रताप ऐसा था कि उससे बड़े एवं धन तथा रसूरन संपन्न लोग घुटने के बल सामने जा बैठते।

पहले के लिए शहर में आ जाने पर ये प्रताप काम नहीं आता था। कक्षा नौ में तेरे नहीं सहपाटी सालों तक गाँव का गंवार मानते रहे। तो आत्मभ्रम की सरहद तक पहुँचाने वाला कोई विला सूत्र मेरे हाथ में नहीं था। पिता जी अपने पैतृक गाँव से अपनी सराव याने मेरे ननिहाल में आ गए। यहाँ मुझे एक लड़की अच्छी लगको लगी। उसकी माँ को मैं मामी कहता था। माँ के साथ था अको भी दिन में एक दो बार उसका हमारे बार आता जाता होता । सांवळा रंग तीखे और नाकनक्श-और इकहरी थोड़ी लंबी देह-1 बेशक बड़ी-बड़ी आँखों के ऊपर कमान सी मौंटें। हँसने पर मोती से दाँत उपाय करने लगते। दूसरी जाति से थी और हमारे माता-पिता की दृष्टि में गाँव के रिश्ते से हम दोनों भाई बहन ठहरते थे। वह थोड़ी समझदार हुई तो 'दादा' कहते ही जगह उसने मेरा नाम लेना शुरू कर दिया था.! औरों के सामने 'ए' 'के' से काम चलती। हम दोनों का विवाह एक ही बरस हुआ। कुछ बरसों बाद गौना हुआ तब वह बोलह की थी और मैं नगरह का। अती और पढ़ाई में व्यस्त हो जाने के बावजूद वह मेंरी स्मृतियों में जा रहल जाती। अल्दी-जल्दी दो बच्चों की माँ बनने तक वह जब भी अति मायके तो मेंरी पत्नी के पास घरों बैठी रहती-काम में हाथ बटाती । मैं प्राय: शनिवार को गाँव पहुँचकर सोमवार को लौटता। वह मेरे लिए ही सब्जी लेकर आती, कारती दीखती। पत्नी उसे दौंकती भर थी। पनी शायद सुरु भाँपने लगी थी। यों तो पत्नी अनपढ़ हैं किन्तु औरत में मेरे छठी इंदिय होता है जो किसी के परसार आमीन को पहचान कर जाग उठती है। जैसे दस लाने तब, उन्हें मेंरी एक निराहता पर भरोसा रहा है। मेरी भी परस्परता में दैहिक संबंधों की उत्सकाशं रही हो पर अफीक्षा, पतन और अनुरक्ति कभी नहीं रही । इस संदर्भ में मुझे आधुनिकता ने डगमगाया अवश्य है पर आस्तिकता ने बचाया भी है। एक और प्रेमाकर्षण मुझे उपलब्ध हुआ, वह भी तब जब मैं पिता बन गया था।

> उन दिनों मोबाइल नहीं होते थे। उसके भाई के शो रुम पर कैण्डलाइन फोन अवश्य था। जल्दी-जल्दी पैडन भारता मैं उसके घर तक आया। द्वार बंद था। अकबकाया था मैं घर से कुछ दूर द्वार पर दृष्टि लगाए रखड़ा रहा । फिर तो बौनाही था । बाद के दिन बड़ी बेचैनी और सूनेपन हो अरे रहे । विवाह के पश्चात वह पति के साथ कहीं बाहर चली गई। मैं अपने घर गिरी की दीवारें थामने में लग गया पर उसे मुळात पा रहा था।

हुआ यूँ कि समय के अंगोरों, संसावत में मेरी पढ़ाई छूट गई..., उसी पढ़ाई को पूरी करने मैं एक नई संस्था में वर्ष भर के लिए पहुँचा कि डिग्री पाकर रोजगार की राह आसान करूँ। विशेष साकर्षण जैसा अब भी मुझमें कुछ नहीं था । यूँ अनाकर्षक भी कभी नहीं रहा। बस पढ़ने का शौक अवश्य जाग गया था इसलिए लोकप्रिय उपन्यासों का नियमित पाठक । नोटबुक पर उसी तर्ज के कुछ उपन्यास लिखने का अभ्यास भी किया जो दस बीस पृष्ठों तक रेंगे, चके भी और घटकर रह गए। कवि-सम्मेलनों की देखा देखी गीत भी गढ़ने लगा। सुना भी

देता था। वह भी कविता आदि में रुचि रखती थी। कॉकेस या संस्था की सुंदर लडिदियों में से एक वह उम्र में मुझसे सात आठ वर्ष छोटी थी। शहर के सुसंस्कृत पारित ब्राह्मण परिवार में जन्मी। परिचय हुआ; मैत्री बढ़ी। बसेका में हमारा समय साथ-साथ बीतता। वह मुझे टेबिल टेनिस सिखाने लगी। मैं सीरन भी गया। परखवारे में एक बार अथवा छुट्टी के दिनों में मैं अब भी सायकल वे गाँव आबा था। सरतेम से वह मेरा ब्राह्मण होता जान गई थी। ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी आदि जिलों से आये छात्र यहाँ तक कि अध्यापक गण भी जानते थे। उसे मेरे विवाहित होते. का पता नहीं था। मेरी कदकाठी में शायद उम्र भी छिप जाती रही होगी। दो बार मुझे वह अपने घर के गई। दूसरी बार उसकी मां ने मुझे अतिरिक्त स्नेह दिया था। ब्राह्मण होने के बावजूद हमारे पूर्वजों के कबीले अलग-अलग थे पर कदाचित उसकी दृष्टि में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता था। कालेज में किसी की निगाहों, कूट मुस्कानों की वह परवाह नहीं करती थी.. मैने एक दो बार उसे चेताने का प्रयास भी किया था पर शायद उसे लगता था कि कुछ गलत नहीं कर रही तो इयार-उधर वालों की परवाह क्यों करे? संस्थाओं के राज्य - साशय कीड़ा एवं सांस्कृतिक सम्मेलन में हमारा दल भी गया था। चार दिन का आयोजन था, हमने प्राचार्य महोदय से निवेदन कर अपने रखवाले तीन दिन और गौग किये कि उधर के दर्शनीय स्थल घूम लेंगे। संस्कृतिक प्रति में मेरी प्रमुख भूमिका थी। नाटक, नृत्य, गीत, वाद-विवाद आदि पर मैं ही राम रखा। प्रदेश -भर में सबसे अच्छे, सो प्रदर्श नहीं श्री हमारी संस्था को मिली। वहाँ हम पहली बार गले मिले। गुपचुप नहीं, साथ के सहपाठियों और प्राध्यापक के सामने। घूमने फिरने के सात दिन जीवन की अमूल्य धरोहर हैं। बाद में मैंने पत्नी के साथ चारों धाम की यात्रा की दो किश्तों में छेद महीने से भी अधिक दिनों तक पर तब तक उमंग और जावेग बहुत दीज चुका था। यूँकी धार्मिक यात्रा में आनंद का रस्म अदायगी ही अधिक होती है।

> वह निश्चय ही पचपन और साद के बीच जा पहुँची होगी किन्तु चेहरे पर ताजगी. थी और लग रहा था कि लावण्य में भी कमी नहीं अति है। इच्छा जागती कि एक बार गो से फिर लगाऊँ पर एक तो वहाँ इतना एकाला न था, दूसरे अपनी इच्छाओं को दबाने खमुझे बचपन से ही अभ्यास है। नारक समादर होते से पहले ही श्री भारद्वाज जा गए अपनी पत्नी के होते। उन्होंने मुझे पार जाने को कहा मैने उन्हें। इस प्रकार एक दूसरे से औपचारिक विदा गी।

परीक्षा समाप्त होने के दो दिन बाद, हम सभी काल सहभोज पर एकक्रित हुए। सब चहको अनार दिख रहे थे किया भीतर यहीं उदासी भी थी। एक कब पाँच बजे कॉफी हाऊस आना। उसने कहा था। भेने सिर हिलाकर गमी गरी। वह शाम मेरे मनस्वरन पर ज्यों की त्यों अंकित है। वह गमिष्या के बारे में कुछ जननायक कहना चाहती थी। मैं उसे कुछ बताना चाहता था। वह कोई नौकरी पाकर आत्मतिसरे होना चाहती थी, चिंता यह कि, जाने कहाँ जाना पड़े। मैं ऐसी नौकरी चाहता कि घर के आसपास बना रहूँ ताकि माँ, भाइयों, बहनों परिवार के साथ खेती की देखभाल होती रहे। इसी दाम में उसे विवहित एवं एक पुत्र का पिता होते की सूचना या जानकारी भी दी।

उसने कहा- "ये मजाक भी बढ़िया है। तुम्हें भी बताऊँ कि मेरी भी बड़ाई हो चुकी है। सगळी किसी साइत में ब्याह होगा। कार्ड दूँगी पत्नी के साथ जरूर ही आता।' वह इतनी जोर से खिलाखलाई कि दूसरी टेबकों पर बैठे लोग चौककर हमें देखने लगे। वह ऐसी ही बिंदास थी। मैने बताया न कि वह दधार-उपार वालों की परवाह नहीं करती थी। काफी हाऊस से निकलकर उसके घर तक कोई एक कि.मी. दूर हम साथ-साथ पैदल आते थे। उसे भारतक छोड़कर मैं अपनी सायकल पर सवार हो होला :- वहाँ से 200 करह कि० मी० दूर अपने आश्रय तक पहुँचने के लिए) चलते चलते मैने कहा- 'विश्वास करो! मैं सचमुच विवाहित हूँ। हम लोग गहरे मित्र ही हो सकते 'हैं, इससे अधिक कैसे..

वह कहरी- 'अच्छा मेरी कसम खाकर कहो/कसम- ..: ये अथ है। मैं झूठ नहीं बोल रहा।'

कुछ क्षण वह वह मेरे मुळे हुए चेहरे की जोर पूछी रही। मैं उससे बाँख नहीं मिला पा रहा होऊँगा। एकाएक उसने बगल से गुजरता औरो रोका और बैठकर चली गई। मैं आवाजें देता रहा पर उसने अनसुनी कर दी।

उन दिनों मोबाइल नहीं होते थे। उसके भाई के शो रूम पर कैण्डलाइन फोन अवश्य था। जल्दी-जल्दी पैडन भारता मैं उसके घर तक आया। द्वार बंद था। अकबकाया था मैं घर से कुछ दूर द्वार पर दृष्टि लगाए रखड़ा रहा। फिर तो बौनाही था। बाद के दिन बड़ी बेचैनी और सूनेपन हो अरे रहे। विवाह के पश्चात वह पति के साथ कहीं बाहर चली गई। मैं अपने घर गिरी की दीवारें थामने में लग गया पर उसे मुळात पा रहा था। कोई

अपराध बोध न होने की आववारी बेराह मेरे साथ भी क्योंकि हमने मर्यादा की लक्ष्मण रेखा नहीं बांधी थी । बात में नहीं कि दैहिक उत्सुकता से पर हम किसी दैवीय कोक के प्राणि थे । हमने बस उस सामाजिक परंपरा का निर्वाह भर किया था जो किसी भी मनुष्य के लिए संभव है। मुझसे रुष्ट और दुखी होकर वह उस दिन भले गई हो पर कहीं कामि ठोकर नहीं गई थी। वैसे भी उसका कोई नायवी अस्तित्व मेरे पास ठहर कर रह गया था। वर्षो पश्चात् हमारी अनपेक्षित मुलाकात हो गई ।- एक चिकतिक स्पॉट पर । खुद तौखक, रंगकर्मी, शायक, वादक गोठ करने गए हुए थे। गोठ गदा चित्र गोष्ठी का ही एक रखा है जिसमें खानपान के साथ सोहबत, संगत का भाव भी जुड़ा है। यह प्राय: आषाढ़ वा श्रावण मास का उपक्रम है जब दो तिगत बार पानी गिरने के बाद उधार- (पानी न बरसते) के दिन हों। मित्र मण्डलियों एवम् परिवारों को साथ लेकर गोठ का खालियर में खूब प्रचलन रहा है। अहारीं यति में निर्मित सीढ़ियों, बारादरियों, छज्जों, छतरियों से सृज्जित चौकय: तालाब के किनारे की पानी अमराई में स्थान-स्थान पर अँगी दियाँ दहक रही थीं ईंट पत्थर जोड़कर बनाए चुल्हे सुलग रहे थे। दाल बाटी चूरमा गोठ की सर्वमान्य, दिवा है जो पत्तल पर परोसे जाने में ही मजा देती है। दोपहर से पहले पकौड़ियाँ उतारी जाती हैं। गोई-कोई बेसन में भांग का चूरा भी मिला लेते हैं । हम लोग प्रकाश दीक्षित (खावियर के साहित्य, बोस्कृतिक जगत का कनिष्ठिकाधिष्ठित नाम) के साथ... किसी मुद्दे पर बहस या चिंता में उनसे थे कि एक ओर से दो युवतीनुमा महिलाऐं - आती दिखीं। एक की चालढाल उस जैसी प्रतीत हुई। लगा कहीं ये वो तो नहीं ? - हाँ वही थी। भीतर जैसे खुशबू भरी बयार सी बह चली /- 'अरे तुम...खड़े हो मैने कहा।

वह रखड़ी हो गई। वह भी चौंकी थी शायद। तटस्थ आज से बोली- 'हो मैं। और सुनो! मैं नहीं, अब...भारद्वाज हूँ।' इतना बताकर उसने प्रकाश दीक्षित को नमस्कार किया और सँगिती के साथ आगे बढ़ गई। मैं अचकचा खड़ा रहा। प्रकाश दीक्षित ने पूछा- 'महेश ! ये महिला कौन है ?' 'मेरी क्लास फैकी रही है। अमुक परिवार से है। बताया मैते। प्रमाश उस परिवार से परिचित थे । मेरा मन बहस से उत्तर गया किंतु शामिल तो रहना ही था। 'समय जात नहिं नागहि बारा।'- हमारे सामने नई पीढ़ी जवान हो यर खड़ा हुई और हम बुढ़ापे के पाले में जा पहुँचे। वह एक भव्य सरकारी आयोजन था जिसके एक सत्र में अध्यक्ष मण्डल थे, सदस्य घि भूमिका पर मुझे किया गया। वस्तुत: इस-. आयोजन के सूत्र मेरे एक अधिकारी मित्र के पास थे। महिला केन्द्रित उस गायिक्रम में प्राय: सभी वच्ण, प्रवक्ता कलाकार शहर से बाहर के थे। बाहर के एक आमंत्रित अतिथि आ न पाए थे। अधिकारी मित्र का आग्रह था कि उस रिक्त स्थान को मैं भर दूं। नदी हुई उम्र का एक प्रभाव यह भी होता है कि. आपको वह आदरशिय बनाकर अध्यक्षता, मुख्य अतिथि, विशेष प्रतिष्थि जैसों की श्रेणी में के आती है। दिनी तैयारी के मैं मैच से आग यांग सांग जाने क्या- क्या बोल गया कि श्रोताओं को बहुत पसंद आया। संयोग की बात है। हो सकता है कि गंभीर अनिरत, वक्तव्य सुन-सुनकर ऊबे श्रोताओं को मेरे अगंगीर वक्तव्य से कुछ राहत महसूस हुई हो। जो हो, सन समाप्ति के उपरांत अपने वक्तव्य पर प्रशंसा व यथोचित अभिवादन स्वीकार करता मैं हॉक से निकल रहा था कि उसे सामने चुराते खडे पाया। नगा जैसे मेरे अनेक, प्रिय पात्र पृष्ठों से निकलकर एक रूप हो सामने आ गए हों। मेरे अनेक पात्रों में उसकी छवि के अंश हैं। एक बार पुन: कोई तरंग जैसी मुझे सिर से पांव तक नहळा गई। वही तो थी सचमुच, उम्र उस पर बहुत कम असर डाल पाई थी। उतना ही प्रसन्न मुख आँखों में वैसी ही अनुरति किंचित भराव के साथ वही देहयष्टि वही साकारता जो तीस तीस वर्ष पहले थी। बगल में खड़ा एक पौने छहफुटरा भद्रपुरुष मुस्कुराता हुआ हमें देख रहा था।

ये हैं श्री...भारद्वाज। समझ गए? 'हाँ, अब जान गया भारद्वाज की ओर हाथ बढ़ा मैने परिचय दिया ! मैं महेश।

जी, जानता हूँ आपको। घर पर आपकी दो किताबें हैं । आप कच्चास फैलो है।

इतके बेस्ट फ्रेंड- है ना!

हम तीनों बाहर प्रण्डप कस के एक कोने में जा खड़े हुए। कुछ औपचारिक 'आइये! सड़क के उस पार की बिल्डिंग में 'काफी टाइम' नाम बातें आरंभ हुई- से कॉफी शॉप है, कॉफी पीते हैं। मैने श्री भारद्वाज से कहा काँग की आदत मुझे नहीं इन्हें है। दरअसल आपका कार्यक्रम बिर्लन से समाप्त हुआ। मुझे दो बजे एक जगह मिलता है, केट हो गया। तीन बजे से काला कार्यक्रम है ना! मैं काम निपटाकर आता हूँ - कॉफी आप लोग पीजिए।' पीते हुए उधर से चले जाता। अगले सत्र में इन- इतका वक्तव्य है- उसने बैय से कार्ड निकाल कर नाम पढ़े। भई, ये सब तुम्हीं सेको। अपने लिए इतनी खुरांक बहुत है। हाँ सर के साथ कॉफी किए लेते हैं।' - भारद्वाज ने स्पष्ट किया। कॉफी में साथ देकर श्री भारद्वाज अपने काम से चले गए। -- वहाँ से हम साथ हुए. दोपहर का भोजन, अगळा सन, छोटा सा नाटक इस बीच घर परिवार से दुनिया जहान की बातें उसकी वही मूक हैसी कि मैं ही इधर-उधर देखने लगता हमने बीते दिनों और

कॉलेज के परिचितों के स्मरण किया। एक दूसरे के घर का पता तथा मोबार नंबर- नोट लिये।

वह निश्चय ही पचपन और साद के बीच जा पहुँची होगी किन्तु चेहरे पर ताजगी. थी और लग रहा था कि लावण्य में भी कमी नहीं अति है। इच्छा जागती कि एक बार गो से फिर लगाऊँ पर एक तो वहाँ इतना एकाला न था, दूसरे अपनी इच्छाओं को दबाने खमुझे बचपन से ही अभ्यास है। नारक समादर होते से पहले ही श्री भारद्वाज जा गए अपनी पत्नी के होते। उन्होंने मुझे पार जाने को कहा मैने उन्हें। इस प्रकार एक दूसरे से औपचारिक विदा ली।

यहाँ भी एक पत्रकार मित्र ने जानना चाहा था- 'ये मोहतरमा कौन थीं आपके साथ? परिचित है, साथ-साथ पढ़े हैं हम। मैंने बताया।' हो, तभी आपके चेहरे पर इतनी सैनक है। - वह धीमें से ऐसा था। मैं अगले दिन उसके आने की प्रतीक्षा में था, पर वो नहीं आई। न आने की वजह मैं।

उससे मोबाइल फोन पर पूछ सकता था। अथवा वह भी बता सकती थी किन्तु न उसने पहल की न मैने। उस संयोग के पश्चात नरसों बीत गएन न बात हुई न मुलाकात। मन में जरूर कोई इच्छा की बनी रहती है कि शायद कहीं वह मिल जाए। अबान मिळी तो वह भी नहीं जो मेरा पहला आकर्षण थी। जो किशोरी से युवती एवं सुनती से. दो बच्चों की माँ बनने के बाद मेरी पत्नी के बहाने मुझसे मिळते आती रही थी। उसके माता-पिता व भाई अपना खेत बेचकर रोजगार की तलाश में कहीं और जा बसे थे।

सांसारिक सुख-भोग के लिहाज से मेरे लिए कोई कमी नहीं रही है। मेरे गाँव, बड़े के लोग, नाते-रिश्तेदार अब मुझे सुखी, संपन्न भाग्यशाली तक मानते हैं फिर भी कुछ लिखने, सोचने के लिए जोड़ बाकी करते बैठता हूँ तब नतर्ज फैज अहमद फैज़ होता यह है कि कर रहा था गमें जहाँ का हिसाब, आज तुम बेहिसाब याद आए। आप जानते हों कि मैं कहानियाँ गढ़ना हूँ। ये कहानी कैसी लगी ? बताइयेगा....।